IJCSPUB.ORG ISSN : 2250-1770

INTERNATIONAL JOURNAL OF CURRENT SCIENCE (IJCSPUB)

IJCS PUBLICATION (IJCSPUB.ORG) An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

हरविजयम् में भक्ति भावना

डा0 राका शर्मा

रीडर, संस्कृत–विभाग, एन.के.बी.एम.जी कॉलेज,चन्दौसी

ईश्वर की उपासना से रहित बुद्धि में पवित्रता और चमत्कार नहीं आ सकता है।

भक्ति से रहित ज्ञान शान्ति देने वाला नहीं होता है। इसीलिए विद्वानों ने भक्ति का आश्रय ग्रहण करके अपने हृदय के भावों को अभिव्यक्त किया है। वेद, उपनिषद्, पुराण, आख्यान तथा काव्यों में भगवान् शंकर की अलौकिकता का वर्णन हुआ है। भगवान् शंकर ही जगत के पिता हैं वे अजर, विशाल, ज्ञानी तथा सभी को प्रेरणा देने वाले हैं –

भुवनस्य पितरं गीभिराभी रूद्रं दिवा वर्धया रूद्रभक्तौ।

बृहत्रमुष्वमजरं सुषुम्नमृघधुवेम कविनेषितास।। 1

माण्ड्क्योपनिषद् में शंकर के स्वरूप का निम्न रूप में गान किया गया है–

अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यलक्षणमचिन्त्यव्यपदेश्यमेकात्म–प्रत्ययसारं, प्रपञ्चोपशमं, शान्तं, शिवमद्वैतम् चतुर्थ मन्यन्ते, स आत्मा, स विज्ञेयः।2

शिव पुराण में तो भगवान शंकर की महिमा का वर्णन श्रुतियों में कहे गये मन्त्रों का अनुवाद ही प्रतीत होता है। 3

भगवान शंकर की विशालता, सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता से आकृष्ट होकर महाकवि रत्नाकर ने हरविजयम् महाकाव्य में अपनी भक्ति भावना को अभिव्यक्त किया है।

महाकवि रत्नाकर ने शिवजी की महिमा को अपार माना है। उन्होने अपना समस्त भक्तिभाव अपने आराध्य देव शंकर के चरणों में समर्पित कर दिया था। वेद, पुराणों तथा शास्त्रों में जो–जो भाव भगवान् शंकर के विषय में प्रकाशित किये गये हैं, वे–वे समस्त भाव उनके द्वारा की गई भगवान शंकर की स्तुति मे आ गये हैं।

वे भगवान शंकर एक रूप होकर भी अनेक रूप हैं। स्थिर होकर भी गमनशील हैं, आकाश में स्थित होकर भी भूमि पर स्थित हैं, उष्ण होकर भी शीतल है, शीतल होकर भी उष्ण हैं। इस प्रकार उभयात्मक होकर भी अनुभयात्मक हैं। 5

कवि का भक्त हृदय सर्वत्र ही अपने इष्टदेव का प्रतिबिम्ब देखता है। जलतरंगों में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा जो अनेक रूप धारण करता है, अथवा विविध स्थानों पर प्रतिबिम्बित सूर्य की धूप जो बहुरूपता को

धारण करती है, तो इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह ईश्वर एक होकर भी अनेक रूपों में विद्यमान है। 6

कवि की दृष्टि में सांख्य दर्शन के पुरूष भी भगवान् शंकर ही हैं। 7

जड़ प्रकृति स्वयं कुछ भी करने में असमर्थ है इसलिए भगवान शंकर को पुरूष रूप में स्वीकार किया गया है–

"निजकार्यचक्रघटने ह्यचेतनं प्रतिपद्यते किमिव वस्तु कर्तृताम्।।
कथयन्त्यतः प्रभवहेतुमीश्वरं भविनां भवन्तमिह चिल्क्रियात्मकम्"।। 8

समस्त शास्त्र आपके ही रूप हैं। आप ही वेद वैयाकरणों के शब्दब्रह्म हैं।आप ही जीवों के प्राणधारक पञ्चवायु हैं। 9

जिस प्रकार मिट्टी के पात्रों को देखकर उसको बनाने वाले कुम्हार का अनुमान किया जाता है। वैसे ही नैयायिक तथा वैशेषिक इस संसार को देखकर शिव को उसका कारण मानते हैं–

"जनतेन्द्रियातिगविशुद्धगोचरद्वयणुकादिबन्धगतकायदर्शनात्।
घटकुम्भकारवदकार कात्मनस्तव कारणत्वमनुमीयते बुधैः।।"

"द्वयणुकादियुक्तिमदशेषगोचरं कृतवान्तिचित्रमिह कार्यमण्डलम्।
अतिसूक्ष्मदृक्त्वसकलार्थ्वेदिता विभुतान्वितस्त्वमनुमीयते बुधैः।।" 10

भगवान शंकर के प्रसन्न होने पर विपरीत कार्य भी सिद्ध हो जाते हैं :–

"यदानुगुण्यं भजते जगत्यसौ
तदा तदात्वायतिषु स्फुटं नृणाम्।
क्रियाविशेषाः सकलाः प्रवर्तिता
विपर्ययणापि हि सिद्धिहेतवः।।" 11

उनकी कृपा होने पर कोई भी कार्य असम्भव नहीं होता है। 12

समस्त जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा संसार इन भगवान शंकर का ही निश्वास रूप होकर पराधीन है :–

"इहैव निःश्वाससमागमक्रिया–
प्रबन्धभेदेन चराचरात्मनि।
व्रजत्यभीक्ष्यं प्रतिबद्धवृत्तिता–
मशेषविश्वोदयसंह्रतिक्रमः।।" 13

महाकवि रत्नाकर इस तथ्य से भलीभांति परिचित थे कि विष्णु तथा शंकर में कोई भेद नहीं है इसीलिए उन्होने भगवान् शंकर के साथ विष्णु की भी स्तुति की है। वस्तुतः जो तत्वज्ञानी होते हैं, वे भगवान शंकर तथा विष्णु में भेद–बुद्धि नहीं रखते हैं।

शिवपुराण में स्वयं भगवान शंकर विष्णु भगवान्के साथ अपनी अभेदता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं :–

"ममैव हृदये विष्णु विष्णोश्च हृदये ह्यहम्।
उभयोरन्तरं यो वै जानाति न मतो मम।।" 14

महाकवि रत्नाकर ने भी अपनी भक्ति–भावना में भगवान शंकर तथा विष्णु की एकता प्रतिपादित की है। हरविजय महाकाव्य के प्रारम्भ में ही कवि कहता है –

"जृम्भाविकासितमुखं नखकर्षणान्त–
राविष्कृतप्रतिमुखं गुरूरोषगर्भम्।
रूपं पुनातु जनितारिचमूविमर्श–
मुदवृत्तदैत्यवधनिर्वहणं हरैर्वः।।" 15

शैव होने पर भी हर तथा हरि में अभेद के कारण कवि ने भगवान विष्णु के नृसिंह, मोहिनी तथा वराह अवतारों का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है :–

"यस्यां निशासुगमनं नवपद्मराग–
सद्मप्रभारूणितमध्यगतेन्दुलेखम्।
वक्षो नृसिंहनखरैरसुराधिपस्य
सासृक्छटं विषमभिन्नमिवाचकास्ति।।" 16

"यस्य व्यलोक्यत सुधाहरणाभियोगे
लीलापुरंध्रिवपुषः कुचकुम्भयुग्मम्।
वक्षः स्थलीसरभसोर्त्रिथतगूढनाभि–
रूढ़ारविन्दमुकुलद्वयशोभि दैत्यैः।।" 17

"आरोपितोऽपि सकलासुरसंप्रहार–
भारो भराय न भविष्यति मेऽत्र बाहो।
संहारकोलवपुषः खगकेतनस्य
दंष्द्राग्रभाग इव रत्नवतीनिवेशः।।"
"विस्तरंशालिकुरूविन्दशिलानितम्ब–
भागोत्थितं वर्हति यः करचक्रवालम्।
स्कन्धावघर्षणविलग्नमहावराह–
विश्लिष्टकेसरसटानिकुरूम्बशोभम्।।"
"दष्ट्रागृहीतगुरूसंभ्रमभूतधात्री–
पातालपातपुनरूक्तिभयेन रूद्रम्।
अन्तर्विघूर्णनविसंस्थुलसप्तलोक–
मासीद्वराहवपुषः श्वसितं च यस्य।।" 18

इन श्लोकों में कहीं तो उपमान रूप से और कहीं प्रकारान्तर से कवि ने विष्णु भगवान् के अवतारूपों को दर्शाया है। "प्रभाभयनयप्रकाशनम्" नाम नवें सर्ग में कवि ने हरि तथा हर की अभिन्न मूर्ति का प्रतिपादन किया है। 19

IJCSPUBLICATION (IJCSPUB.ORG)

महाकवि रत्नाकर की भक्तिभावना में प्रत्यभिज्ञा सिद्धान्त स्वतः ही उभरते चले आते हैं। जब ऋतुएं भगवान शंकर का वर्णन करती है तब इसमें प्रत्यभिज्ञादर्शन की पारिभाषिक शब्दावली अनायास ही उमड़ती चली आती है। जिस प्रकार वट का पत्ता हरियाली को छोड़कर पीलेपन को धारण कर लेता है, उसी प्रकार यह पशु अपनी पशुता को छोड़कर शिवता को प्राप्त कर लेता है –

"अपहाय यद्वदिह नाथ! नीलतां
वटपादपच्छद् उपैति पीतताम्।
पशुतामपोज्झ्य तव शासने स्थितः"
शिवतां सुरेश! किल तद्वदेत्यणुः।। 20

भगवान की कृपा से ही यह जीव 'पुदगल' धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य सब में प्रवत्त होता है–

"भवतो भवोद्भव भवाभवस्थितेः
प्रतिपन्नपुदगल विभक्तवैभवात्।
अभिगम्य शक्तुयुपकृतैकचित्ततां
चतुरर्थगोचरगतिर्भवत्यणुः।।" 21

कला, विद्या, राग से रंजितचित्त यह अणु शिवजी की इच्छा से प्रकृति का उपभोक्ता होता है। भगवान् शिव ही तीन प्रकार के कंचुकों से आवत्त, नियति से नियंन्त्रित और काल से कलित इस पशु को मुक्त करते हैं – 22

अष्टमूर्ति भगवान् की कृपा से ही जीव के सब बंधन कटते हैं और वह अपने प्राप्तव्य को प्राप्त कर लेता है। 23

सार यह है कि जैसे रासायनिक प्रक्रिया से तांबा स्वर्ण रूप को प्राप्त करके फिर तांबा नहीं हो सकता वैसे ही शिव की कृपा से शिवत्व को प्राप्त करने वाला यह जीव फिर से पशुता को प्राप्त नहीं कर सकता –

IJCS PUBLICATION (IJCSPUB.ORG)

"परिमृष्टिकालिकमवाप्य हेमतां
न यथैति ताम्रमिह ताम्रतां पुनः।
विमलीकृतं सदणुतत्त्वमिच्छया
तव नाथ! नर्च्छति तथा स्ववासनाम्।।" 24

महाकवि रत्नाकर ने भगवती चण्डी की प्रार्थना की है। वस्तुतः शक्ति के बिना शिवजी की अर्चना अधूरी ही है। शैव और शाक्त दर्शनों का तथा तन्त्रों का यही सिद्धान्त है।

जिस प्रकार जननी तथा जनक माता पिता के बिना सन्तति उत्पन्न नहीं हो सकती उसी प्रकार शक्ति तथा शिव के बिना संसार की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। शिव परमात्मा हैं, शिव पराशक्ति हैं। शिव महेश्वर हें, शिवा माया है। शिव पुरूष हैं, शिवा प्रकृति हैं। शिव रूद्र हैं, शिवा रूद्राणी हैं। शिव भास्कर हैं, शिवा उसकी प्रभा है। शिव अग्नि हैं, शिवा स्वाहा हैं। शिव रूचि हैं, शिवा भावना हैं। शिव यज्ञ हैं, शिवा प्रणति हैं। शिव विषयी हैं, शिवा विषय हैं। शिव द्रष्टा हैं, शिवा दृश्या हैं। शिव आस्वादक हैं, शिवा आस्वाद्या हैं। शिव मन्तव्य हैं, शिवा मन्तव्या हैं। शिव क्षेत्रज्ञ हैं, शिवा क्षेत्र हैं। शिव दिन हैं, शिवा रात्रि हैं। शिव आकाश है, शिवा पृथ्वी हैं। शिव समुद्र हैं। शिवा उसकी बेला हैं। शिव वृक्ष हैं, शिवा उसकी लता हैं। शिव अर्थसमूह हैं, शिवा शब्दराशि हैं। यह पवित्र युगल सदा ही जगत्को आलोकित करता है।

समस्त संसार की जननी वह देवी, वह ज्योति हे, जो समस्त पापों का दहन कर देती है। उसका कोई भी स्पष्ट स्वरूप नहीं है, परन्तु फिर भी वह प्रकाशित होती है तथा उसका अनुभव किया जाता है–

"घोषाक्षरस्वरनिराकृतमप्यकण्ठ्य–
तालव्यमव्ययमनासिकमप्रतिष्ठम्।
निःसंचरव्यतिकरप्रतिसंचरात्म–
देहप्रभंजनविशालरथाधिरूढ़ाम्।।
प्रज्ञाधनं स्थिरचतुरश्चरणत्वामाप्त–
मद्वैततासमरसं परिमृष्टकूटम्।
ज्योतिः परं यदमृतं हृदि चाकशीति–
नेदिष्ठमयविगलत्तमसा दविष्ठम्।।" 25

यह वह तत्व है जो अभिन्न होकर भी भिन्न प्रतीत होता है, जो निरन्तर हृदय में स्थित होकर भी आनन्दरूपता को धारण करता है–

"स्थित्यर्थमस्य जगतः कथमप्युपाधि–
भेदादभिन्नमपि यतप्रतिपन्नभेदम्।
यच्चापि सत्यमनिशं हृदयप्रतिष्ठ–
मानन्दरूयममृतं मुनयो गृणन्ति।।" 26

जो तत्व सूर्य अथवा वायु से भी म्लान नहीं होता, जिसके प्रकाश से यह समस्त जगत प्रकाशमान् रहता है। जो पराशक्ति कहलाती हे, जिस तत्व को वैयाकरण स्फोट कहते हैं, जिस तत्व का प्रमाण, प्रमेय आदि सोलह तत्वों से नैयायिक प्रतिपादन करते हैं, जिस तत्व से यह जगत् उत्पन्न होता है, जिस तत्व से यह वागीश्वरी प्रगट होती है, जिस तत्व के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, जिसके नेत्रों से सूर्य की उत्पत्ति हुई, जिसके कटि प्रदेश से अन्तरिक्ष उत्पन्न हुआ, वह तत्व तुम्हीं (चंडिका) हो। लोहित, शुक्ल और कृष्ण वर्णा प्रकृति भी तुम्ही हो –

"ब्रह्माप्रजापतिरवक्षदृगा दिवर्त्म
यद्वन्हिवाततरणीः किल यज्ञसिद्धये।
तस्मिननुशन्ति भवतीं भुवनस्य हेतु–
मेकामजां जनति लोहितशुक्लकृष्णाम्।।" 27

हे देवी! ब्राह्मी, वैष्णवी, माहेश्वरी, ऐन्द्री, चामुण्डा, वाराही, गायत्री तथा सावित्री सब तुम्हारी ही मूर्तियाँ हैं। जिसके ऊपर भगवती की कृपा होती है, उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। उनकी कृपा से अग्नि शीतल हो जाती है, शत्रु मित्र बन जाते हैं तथा यहाँ तक कि चोर भी परिवार के सदस्य की भाँति आचरण करने लगते हैं। 28

तुम्ही प्रलयकालीन मेघों में विद्युत के रूप में विद्यमान हो, तुम्हीं वडवाग्नि की शिखाओं से समस्त सागर के जल को भस्म कर देती हो। 29

चन्द्रमा की चन्द्रिका, श्रीकृष्ण के वक्षस्थल की लक्ष्मी तुम्हीं हो–

त्वं चन्द्रिका कुमुदकाननचक्रवाल–

निद्रानुबन्धिशिथिलत्वमिमित्तमिन्दोः।
लक्ष्मीस्तवमेव नवकौस्तुभरिमशार–
वधः स्थलप्रणयदुर्ललिता मुरारेः।।" 30

देवता भगवती से इस प्रकार निवेदन करते हैं कि हे देवि हमारे अन्दर इससे अधिक आपका गुणगान करने की शक्ति नहीं हे, इसीलिए हम रूक गये हैं, इसलिए नहीं कि हमारे मन में भक्ति भाव समाप्त हो गये हैं। अमृत का आस्वादन करती हुई किस व्यक्ति की जिह्वा उस आनन्द से रहित होना चाहेगी?

"इत्थं स्तुतेस्तव वयं विरताः स्वशक्ति–
शून्यत्वतो न भगवत्यभिलाषभंगात्।
आस्वादयन्त्यमृतशीकरबिन्दुवर्ष–
मभ्येति कस्य रसना विरसामवस्थाम्।।" 31

संदर्भ ग्रन्थ :

1. ऋग्वेद 6/49/10
2. माण्डूक्योपनिषद
3. शिवपुराण, वायु सं. पूर्वखण्ड : 6/14–26
4. हरविजयम् 6/24
5. हरविजयम् 6/48–50
6. हरविजयम् 6/44, 45
7. हरविजयम् 6/18
8. हरविजयम् 6/87, 55, 92
9. हरविजयम् 6/62
10. हरविजयम् 6/73, 81
11. हरविजयम् 12/63
12. हरविजयम् 6/47
13. हरविजयम् 12/65
14. शिवपुराण 9/55
15. हरविजयम् 1/2
16. हरविजयम् 1/5
17. हरविजयम् 10/24
18. हरविजयम् 11/43/30/83, 36/16
19. हरविजयम् 9/21–27
20. हरविजयम् 6/161
21. हरविजयम् 6/149
22. हरविजयम् 6/126–128
23. हरविजयम् 12/67, 68
24. हरविजयम् 6/137
25. हरविजयम् 47/77,78
26. हरविजयम् 47/79

IJCSPUBLICATION (IJCSPUB.ORG)

27. हरविजयम् 47/103
28. हरविजयम् 47/159, 161, 164
29. हरविजयम् 47/136
30. हरविजयम् 47/138
31. हरविजयम् 47/166
32. महाकवी रत्नाकरस्तदीयं हरविजयञ्च – डा० कृष्णकान्त शुक्ल

IJCS PUBLICATION (IJCSPUB.ORG)